INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 11 | DECEMBER - 2022

बाल कथा साहित्य के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन

अनुपमा तिवारी[1] , डॉ. ओम प्रकाश द्विवेदी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]सहायक प्राध्यापक हिन्दी, यमुना प्रसाद शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरमौर, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

शिशु की शब्दावली सरल होती है। धीरे–धीरे उसकी ग्राह्य क्षमता बढ़ती जाती है। अब अपेक्षाकृत बालक की बौद्धिक शक्ति भी विकसित होने लगती है। विषय में भी परिवर्तन होता है। अब उसमें बाल मनोविज्ञान, नटखटपन, उसके संगी–साथी, स्कूल, घर से बाहर का परिवेश आदि समाहित हो जाता है। भाषा भी तद्नुरूप व्यंजक होती जाती है। शब्द–संपदा में विस्तार होता जाता है, किशोर वय में बुद्धि सब कुछ समझने लगती है। विषय–वैविध्य के साथ उसकी शब्द–संपदा भी तेजी से बढ़ती है। उपर्युक्त विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य ही उनके मन और मस्तिष्क की असली खुराक हो सकता है।

मुख्य शब्द – बाल कथा, साहित्य, विकास एवं बौद्धिक शक्ति ।

प्रस्तावना –

शारीरिक विकास में शिशु सर्वप्रथम अपने सिर पर नियंत्रण प्राप्त करता है; तब शरीर की साधारण बनावट में पहले से कुछ सुधार आ जाता है। इसके बाद धीरे–धीरे ऊपर से नीचे के क्रम में अन्य अवयवों पर शिशु नियंत्रण प्राप्त करता है। इसी प्रकार चर्म–सम्बन्धी संवेदनशीलता सर्वप्रथम शरीर के ऊपरी भाग में आती है। इसके बाद वह नीचे वाले अंगों में प्राप्त होती है। इसी प्रकार विकास के अन्य क्षेत्रों–जैसे गति–सम्बन्धी, खेल–सम्बन्धी तथा सामाजिक आदि में भी एक विशिष्ट क्रम मिलता है। बालकों में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ होती हैं। यदि सिखलाई जाने वाली क्रिया का शिशु के स्वाभाविक विकास से सम्बन्ध न हो तो उसे वह क्रिया कदापि नहीं सिखलानी चाहिए। विषय की ग्राह्यता हर बालक में एक समान नहीं होती। चीजों को देखने, उनमें कुछ सीखने की प्रवृत्ति प्रत्येक बालक में भिन्न होती है। शिक्षक होने के नाते मैने प्रायः देखा है कि प्रत्येक बालक के सीखने की, याद करने की क्षमता और रुचि भिन्न–भिन्न होती है। जब दो बच्चे विभिन्न समानताएं रखते हुए भी आपस में भिन्न व्यवहार करते हैं, तो इसे 'वैयक्तिक भिन्नता' कहा जाता है। नर्सरी विद्यालयों में इसी वैयक्तिक भिन्नता को मद्देनजर रखते हुए बालकों से व्यवहार करने की अवधारणा होती है। नर्सरी स्कूलों की उपयोगिता को मानने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए। इन स्कूलों में बच्चों को विभिन्न प्रकार के अनुभव दिये जाते हैं। जिन परिस्थितियों में उन्हें वे अनुभव दिये जाते हैं उन पर पूरा नियंत्रण रखा जाता है। बच्चा कई शब्द और बहुत सी वस्तुओं के साथ अच्छी तरह खेलना सीख लेता है।

वाल्श[1] के अनुसार नर्सरी स्कूल में बच्चा आत्म–निर्भरता, बातचीत करने की योग्यता, सहानुभूति, सहकारिता तथा वस्तुओं के साथ सुव्यवस्थित रूप में खेलना सीख लेता है। प्रारम्भ में ही अन्य बालकों के साथ मिलकर रहना सीख लेना विभिन्न प्रकार के सामाजिक गुण को सीखने के लिए अच्छी नींव है। जिन बच्चों को

नर्सरी स्कूल में जाने का अवसर नहीं मिलता और जिन्हें बहुधा प्रौढ़ों के बीच में ही रहना होता है उनमें यह नींव कच्ची रह जाती है और बाद में इसे मजबूत बनाने के लिए उन्हें बड़ा ही प्रयास करना होता है। हमें यह याद रखना है कि बच्चों को शिक्षा देने का सबसे उत्तम साधन उन्हें ''सीखने के लिए विभिन्न अवसर'' देना है; और नर्सरी स्कूल में ये अवसर पर्याप्त रूप में प्राप्त होते हैं। ''सीखने के लिए विभिन्न अवसर'' देने का तात्पर्य यह हुआ कि उनके विकास के लिए हमें हठात् प्रयत्न नहीं करना है।

जब बालक अपनी अनुभूतियों का प्रकाशन शब्दों द्वारा करने लगता है और जब वह वस्तुओं को उनके नाम से पुकारने में समर्थ होने लगता है तो यह कहा जा सकता है कि उसमें समझ का विकास हो रहा है। विचारों, मनोवृत्तियों, कार्यों और कुछ सामाजिक मान्यताओं का अर्थ समझने लगने का अर्थ समझ के विकास से है। विकसित होते हुए छोटे बच्चे में सभी अनुभवों के सारांश को निकालने की शक्ति का विकास शीघ्र ही नहीं हो जाता। प्रारम्भ में उत्तेजक परिस्थितियों के प्रति एक विशिष्ट रूप में अपनी भाषा के द्वारा वह प्रतिक्रिया दिखला सकता है। जन्म के समय बालक एक कोरे कागज के समान होता है। पृथ्वी पर आते ही उसकी पहली ध्वनि सुनाई पड़ती है 'कहाँ, कहाँ।' यह रोदन ध्वनि होती है। पर इस विषय में कवि कल्पना यह की गयी है कि शिशु पहली बार पृथ्वी पर आते ही कहता है 'कहाँ?'' अर्थात मैं किस लोक में आ गया – यह कैसा अपरिचित आश्चर्य लोक है? वस्तुतः बालक का रोदन एक शारीरिक प्रक्रिया मात्र है, किन्तु इतना सत्य है कि जैसे–जैसे उसका मानसिक विकास होता है–वह जागतिक आश्चर्यों का अनुभव करता जाता है।''[2]

बाल्यावस्था की समस्याओं पर विचार करें तो हम देखते हैं कि हर वय वर्ग की अपनी अलग–अलग समस्या है। किन्तु बाल्यावस्था की ये समस्याएं बालकों को बड़ों की ही देन है। तीनों वय वर्गों में समस्या की भिन्नता के बावजूद उनमें बीजरूप जड़ एक ही है। जैसे किशोरावस्था में शारीरिक बल और जोश अपनी चरम सीमा पर होता है परंतु विवेक इनके संयुक्त प्रभाव पर नियंत्रण रखने के लिए परिपक्व नहीं होता और अपराध कराने की प्रवृत्ति सबसे बलवती होती है। किशोरों के निर्भीक स्वभाव, दूरदर्शिता की कमी, असीम उत्साह, शारीरिक बल, विलक्षण सहन शक्ति तथा साहसिक प्रवृत्ति के कारण हिंसात्मक वारदातों में उनकी भागीदारी सबसे अधिक होती है। वास्तव में देखा जाए तो केवल जैविक तथा शारीरिक कारण ही बाल आपराधिकता के लिए कारणीभूत नहीं होते अपितु जनसंख्या में अपार वृद्धि, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन, शिक्षा प्रणाली, द्रुतगति से हो रहा सांस्कृतिक बदलाव आदि कुछ अन्य ऐसे कारण हैं जो बाल अपराध को निरंतर बढ़ावा दे रहे हैं। विशेषतः विकासशील तथा अविकसित देशों में इस समस्या ने गंभीर रूप धारण कर लिया है। माननीय उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने कहा था कि – "किसी भी राष्ट्र का विकास उसकी युवा पीढ़ी पर निर्भर करता है, इसलिए बच्चों के प्रति दया और सहानुभूति दर्शाई जानी चाहिए। चूँकि बालक जन्मतः अबोध और निर्विकार होते हैं। अतः उनका लालन–पालन सावधानीपूर्वक किया जाए तो शक्तियों का सर्वांगीण विकास होगा और वे उत्तम नागरिक बनेंगे। यदि उनकी उपेक्षा की गई और दूषित वातावरण में रखा गया तो वे कुसंगति में पड़कर आपराधिकता की ओर प्रवृत्त होंगे।" इस संबंध में विख्यात नोबल पुरस्कार विजेता ग्रविल मिस्ट्राल के कथनानुसार हम अनेक भूलों और गलतियों के दोषी हैं लेकिन हमारा सबसे गंभीर अपराध बच्चों को उपेक्षित छोड़ देना है जो जीवन के आधार होते हैं।

शिशु अवस्था के बच्चे सरल शिशु गीतों को याद भी कर लेते हैं और उनकी लय तथा मधुर शब्द योजना की सौन्दर्यानुभूति भी करते हैं। शिशु गीतों के अतिरिक्त पशु–पक्षियों के स्वरूप और उनकी क्रियाओं से सम्बन्धित तथा 'छाता', 'छड़ी', 'घर', 'पेड़' आदि अन्य विषयों पर छोटी–छोटी कविताएँ शिशुओं को रोचक लगती हैं। जैसे –

म्याऊँ, म्याऊँ, म्याऊँ,
बोलो, आऊँ, आऊँ ?''[3]

शिशु अवस्था के पश्चात दूसरी श्रेणी बाल अवस्था आती है। बालक की छः–सात से लेकर तेरह–चौदह वर्ष की अवस्था इसके अन्तर्गत आती है। इस अवस्था के आते–आते बालक का पर्याप्त बौद्धिक और भावात्मक विकास हो जाता है। खेलों में वह सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता है और अध्ययन क्षेत्र क्रमशः विकसित होता चला जाता है। इस अवस्था का एक काव्यांश प्रस्तुत है –

''सागर तालों वाले हम
हरे दुशालों वाले हम,
अब कहते हैं तुम्हें विदा,
बादल भैया टा, टा, टा !''[4]

बालक में किशोरावस्था का उदय तेरह–चौदह से लेकर सत्रह–अठारह वर्ष की वय तक होता है। शिशु और बाल्यावस्था के बाद वह तीसरी अवस्था क्रमशः आती है। इस अवस्था में किशोर में विशेष प्रकार का मानसिक परिवर्तन होता है। किन्तु यह अवस्था एकाएक नहीं धीरे–धीरे आ पाती है। किशोरावस्था में आकर यथार्थ और कल्पना के अंतर को समझते हुए कल्पना जीवी बनता है, जबकि शिशु के सामने यथार्थ होता ही नहीं, केवल कल्पना होती है। उस अवस्था में जाकर किशोर का व्यक्तित्व भी बनने लगता है। किशोर वर्ग की एक कृति इस प्रकार है –

''झनझनझन बाजी रणभेरी, दुर्बल पहने कोपीन दीन।
नत मस्तक, ले उन्नत विरोध, मैं चला युद्ध करने नवीन।।''[5]

वस्तुतः यह वर्गीकरण बाल साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था में किया गया था। उस समय शिशु साहित्य और बाल साहित्य, दो ही वय वर्गों के लिए साहित्य रचना हो रही थी। किशोर वय के लिए साहित्य की अपेक्षा उस समय नहीं सोची गई थी। आज हिन्दी में तीनों वय वर्गों के लिए साहित्य रचना हो रही है किन्तु हिन्दी बाल साहित्य के लगभग सात दशकों के इतिहास में सबसे अधिक बाल वर्ग का साहित्य है, फिर शिशु साहित्य और तब अल्प मात्रा में किशोर साहित्य। इसका प्रमुख कारण किशोरों की इकाई को पहचानने का अभाव है। किशोर इकाई अत्यंत जटिल होती है। इसमें कभी वाल्यावस्था का भ्रम होता है, कभी युवावस्था का। फलतः जितनी आसानी से शिशु या बालवर्ग को कल्पना से पकड़ा जा सकता है, किशोर वर्ग को नहीं। किन्तु अब किशोरों के लिए साहित्य रचना हो रही है और साहित्यकार इनकी मनोदशाओं को पकड़ने में सफल हुए हैं।

विश्लेषण –

बालमन पर अभिप्रेरणा का प्रभाव के संदर्भ में डॉ. देवसरे ने 'यात्रा–कथा' में बालमन की धारणाओं का इस प्रकार आधान किया है – उन दिनों मैं भोपाल में था। यह बात 1961 की है। चौक बाजार में पत्र–पत्रिकाओं की एक छोटी–सी दुकान पर खड़ा कुछ पत्रिकाएँ देख रहा था तभी वहाँ से एक दम्पती अपने आठ–दस साल के लड़के के साथ गुजरी। दुकान पर कई रंगबिरंगी पत्रिकाएँ लटक रही थीं। बच्चों की भी एक पत्रिका थी। वह बच्चा उस पत्रिका को देखकर ठिठका। फिर उसके अपने माता–पिता ने पहले उसे समझाना चाहा कि और दूसरी चीजें भी तो तुम्हारे लिए खरीदी हैं, इसलिए पत्रिका नहीं खरीदनी है। बच्चे ने माँ के कान में कुछ कहा–शायद किसी प्रिय कहानी या कार्टून–कथा की बात कही होगी। पर उन्होंने वह पत्रिका नहीं खरीदी। बच्चे ने जिद की तो उसकी अनसुनी करके, उसे खींचते हुए वे आगे बढ़ गए। बच्चा उदास और रुआँसा हो उठा था। उस बालक के मन में अपनी पसंद की पत्रिका पाने की ललक, माता–पिता का रूखा व्यवहार और उपेक्षा। यह घटना बालक को किस तरह की प्रेरणा देगी यह विचारणीय है क्योंकि ऐसी घटनाओं के प्रतिफल निर्णायक और दूरगामी होते हैं।

अब्राहिम लिंकन का कथन है– ''बालक एक ऐसा व्यक्ति है जो आपके कार्यों को आगे बढ़ाएगा। आज जहाँ आप बैठे हैं, वहीं कल वह बैठेगा। और जब आप चले जाएँगे तो आपके महत्वपूर्ण कार्यों को वह पूरा करेगा। आप अपनी इच्छा से कोई भी नीति अपना सकते हैं। किन्तु उन्हें किस तरह पूरा करना है, यह बालक पर ही निर्भर करता है। आपकी सभी पुस्तकों का मूल्यांकन उनकी प्रशंसा अथवा निंदा उसी के द्वारा होगी। वास्तव में मानवता का भविष्य बालक के ही हाथों में है।''[6] जीवन के हर क्षेत्र में अभिप्रेरणा (बाल साहित्य) की निर्णायक भूमिका हो सकती है। सीखने का प्रमुख आधार प्रेरणा है। अभिप्रेरणा लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोगी होती है। चरित्र निर्माण का प्रमुख आधार है, यह अभिप्रेरणा रूपी बाल साहित्य।

आपके बच्चे क्या सोचते हैं? उनकी मानसिकता क्या है? अपने परिवेश में वे किस तरह जी रहे हैं? यह सब जानना न केवल रोचक है, बल्कि सफल बालसाहित्य–रचना के लिए आवश्यक भी है। आज की बाल साहित्य–रचना का स्वरूप एकदम नया है। वह मनोविज्ञान पर आधारित यथार्थ से जुड़ा हुआ लेखन है। हिन्दी

बाल कविता अपने जिन इन्द्रधनुषी रंगों से बच्चों व बड़ों को समान रूप से मोहती रही, उसमें एक है– बाल–मन की झांकी। हालांकि बच्चों के मन में प्रविष्ट होकर उनके सपनों, आकांक्षाओं, अनुभूतियों और समस्याओं की थाह पाना आसान नहीं है, पर सिद्धहस्त बाल साहित्यकार ने परकाया प्रवेश जैसी सिद्धि का चमत्कार दिखाते हुए इस असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया है। सच तो यह है कि किसी घटना या परिस्थिति विशेष के संदर्भ में हर आयु वर्ग के बच्चे की सोच भी एक जैसी नहीं होती है। शिशु, बालक और किशोर उसे अपने नजरिये से देखते हैं, तदापि सच्चा बाल हृदय पाने वाले साहित्यकार हर उम्र के बच्चे के मन को पकड़कर उसका यथातथ्य चित्रण करने में हमेशा ही निष्णात रहे हैं।''[7]

बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति शैशवकाल से रहती है। इसी की सहायता से वे जीवन के बहुत से उपयोगी कार्य सीखते हैं। इसीलिए बच्चों के लिए नाटकों का बहुत महत्व होता है। नाटकों के द्वारा बच्चों के समक्ष अनेक घटनाएँ मूर्त रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। नाटक देखते समय बच्चों का प्रत्यक्ष ज्ञान बहुत जागृत होता है, और इस कारण इन घटनाओं का बालमन पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

''खलील जिब्रान'' का निम्नांकित कथन बाल मनोविज्ञान की ओर इंगित करता है – ''तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन विचार नहीं, क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बंद कर सकते हो, लेकिन आत्मा नहीं, क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हो, सपनों में भी नहीं देख सकते। तुम उनकी तरह बनने का प्रयत्न कर सकते हो, लेकिन उन्हें अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना, क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न बीते हुए कल के साथ रुकता ही है।''[8]

खलील जिब्रान का यह कथन बच्चों के मनोविज्ञान को स्पष्ट करता है। बच्चे स्वतंत्र होते हैं। वे हर कदम पर मुक्त होकर सांस लेते हैं, जीते हैं और विभिन्न स्थितियों के बारे में अपनी परिभाषाएँ, अपने अर्थ निर्मित करते हैं। भारतीय बाल साहित्य की मीमांसा करते हुए विष्णु प्रभाकर ने लिखा था– ''बीसवीं सदी को बालकों की सदी कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि इस सदी में पहली बार यह स्वीकार किया गया कि बच्चों का स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। इससे पहले वे केवल बड़ों का छोटा रूप ही माने जाते थे। बीसवीं सदी ने ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में, विशेषकर मनोविज्ञान के क्षेत्र में, नई खोजों के कारण इसी भ्रम का निराकरण किया।''[9]

बाल विकास में बाल साहित्य का यह योगदान आज एक अत्यंत दायित्वपूर्ण कार्य बन गया है। बालसाहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक पाल हेजार्ड के शब्दों में – ''बच्चों की पुस्तकों में गंभीर नीतियों की बातें होती हैं और वे अनेक सत्यों को जीवन में शाश्वत बनाती हैं– जो अपनी ओर से बच्चों में सत्य और न्याय के प्रति आस्था जगाती हैं। पुस्तकें वे ही अच्छी होती हैं जो बच्चों को बाह्य ज्ञान ही नहीं अंतर्ज्ञान भी दे सकें, एक ऐसा सरल सौंदर्य दे सकें जिसे वे सरलता से ग्रहण कर लें और उनकी आत्मा में ऐसी भावना का संचार कर सकें जो जीवन में चिरस्थायी बन जाएं। वे सार्वलौकिक जीवन के प्रति उनके मन में आस्था उत्पन्न करें और खेल की महत्ता तथा साहस के प्रति आदर जागृत करें।''[10]

यह आवश्यक नहीं है कि बच्चों के लिए लिखी गई सभी पुस्तकें साहित्य ही हों और न यही आवश्यक है कि बड़े लोग जिसे बाल साहित्य मानते हैं या जिसे बालरुचि के अनुकूल लिखी गई पुस्तक मानते हैं वह बच्चों को पसंद आ ही जाए। ऐसे भी लोग हैं जो बाल साहित्य को बड़ों के किसी कथानक का सरल और बचकाना प्रस्तुतीकरण मानते हैं। यह विचार बच्चों को बड़ों का सूक्ष्म संस्करण सिद्ध करता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि बचपन के विषय में कितनी गलत धारणा बनी हुई है। वास्तव में बच्चों के अनुभव, बड़ों से बिलकुल भिन्न होते हैं। उनकी अलग दुनिया होती है, जिसमें जीवन के मूल्य बालसुलभ मनोवृत्ति के आधार पर निर्मित होते हैं– बड़ों के आधार पर नहीं। बालविकास की दिशा में बालसाहित्य की सही भूमिका का निर्वाह करने के लिए इन सभी पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है।[11]

आज विश्व के सभी राष्ट्रों ने बालविकास में बालसाहित्य की भूमिका का महत्व समझा है और प्रत्येक राष्ट्र में उसे एक निश्चित विचारधारा के अंतर्गत तैयार किया गया है। इंग्लैण्ड में प्रायः सभी बड़े लेखकों ने बच्चों के लिए कुछ न कुछ लिखा। अंग्रेजी का वह बाल साहित्य बच्चों में क्रियात्मक भावना का संचार करता है और अपने राष्ट्र के प्रति पूर्णतया समर्पित होने की प्रेरणा देता है। अमरीका का बाल साहित्य इससे भिन्न विचारधारा वाला है। वहाँ समानता और असमानता–दोनों तरह की बातें सिखाई जाती हैं। किन्तु बालविकास में बालसाहित्य के महत्व को पूरी तरह स्वीकार किया जाता है। अमरीकी बालसाहित्य में जीवन के भावात्मक पक्ष

पर कम, व्यावहारिक पक्ष पर अधिक महत्व दिया जा रहा है। उसमें काल्पनिक और जादूभरी कहानियों के लिए कोई स्थान नहीं है। मशीन कैसे बनती है, हवा में कैसे उड़ते हैं, पानी पर जहाज कैसे चलता है आदि बातें बताना अधिक उपयोगी समझा जाता है। रूस में अक्तूबर क्रांति के बाद यह काम सरकार ने पूरी तरह अपने हाथों में ले लिया था, किन्तु अब माता–पिता भी इस दायित्व का निर्वाह करने लगे हैं। रूस में बालसाहित्य रचना का उद्देश्य है– आज की नई पीढ़ी में अपनी कल्पनाओं का मार्गदर्शन करने की क्षमता उत्पन्न करना, उसे सही दिशा में अग्रसर करना, अपनी मातृभूमि में साम्यवादी विचारधारा को बनाए रखने के लिए मौखिक शक्ति का उपयोग करना। जर्मनी में दो महायुद्धों के बाद बच्चों के साहित्य के स्वरूप में बहुत से परिवर्तन आए। वहाँ प्रारम्भ से ही इस ओर ध्यान दिया जाता है कि बालक में ऐसी विचारधारा जन्म ले जो उसे जीवनमूल्यों और उद्देश्यों को जानने के योग्य बना सके। फ्रांस के बालसाहित्य का उद्देश्य है– सुखी जीवन बिताने के लिए बच्चों को मुसीबतों से संघर्ष करना सिखाना।[12]

बच्चे बाल संवेदना का समंदर होते हैं। उनके अंदर बाल मनोभाव, अनेकानेक विचार लहरों की तरह सदैव उठते रहते हैं। उनको उचित मार्गदर्शन एवं सही वातावरण द्वारा सही जानकारी देकर शांत किया जा सकता है। आज का बालक समसामयिक मनोभावों और विचारों का जिज्ञासु पुंज है, जो तर्क कर अपने अंदर उठ रहे भावों को अभिव्यक्ति देकर अपने विचारों एवं समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करता है। बच्चे बहुत सी कल्पनाएं करते हैं और इन्हें सोच–सोच कर आनंदित भी होते हैं। जिज्ञासु बालक सर्वप्रथम प्रकृति से प्रभावित होता है। जीव–जन्तु, पशु–पक्षी उसकी कल्पनाओं में बहुत बार उसे नए–नए स्वप्न देते हैं। बच्चा हर कार्य बन्धन मुक्त होकर करना चाहता है। बाल साहित्य के प्राणवान सूत्रधार राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी की "जी होता चिड़िया बन जाऊँ" नामक बाल मनोवैज्ञानिक कविता इसका जीवंत उदाहरण है –

"जी होता चिड़िया बन जाऊँ,
मैं नभ में उड़कर सुख पाऊँ।
मैं फुदक–फुदक कर डाली पर,
डोलू तरू की हरियाली पर।"[13]

वे भावुक क्षणों में भी आगामी दृश्यों को तुरंत भाँप जाते हैं, भावानुरूप शब्द संयोजन करने की कला में पारांगत डॉ. परशुराम शुक्ल की यह बाल मनोवैज्ञानिक कविता उसका प्रमाण है –

"टीचर जी को चढ़ा बुखार,
अधिक नहीं बस एक सौ चार।
सर पर रखी गीली पट्टी,
बच्चों समझो कल की छुट्टी।"[14]

शुक्ल जी ने 'टीचर जी का डंडा' में बच्चे के मन में डंडे के प्रति डर को रोचक शब्दों में संजोया है। बच्चा टीचर का डंडा उठाकर लाता है और मम्मी से कहता है कि इसे लकड़ी कंडे की जगह जला लो और अगर टीचर ने फिर मारा तो मैं फिर डंडा उठा लाऊँगा। बच्चे की भावना बड़ी ही हृदयग्राही है –

"मम्मी–मम्मी मैं लाया हूँ
टीचर जी का डंडा।
इसे जलाकर चाय बना लो,
छोड़ो लकड़ी कण्डा।।"[15]

डॉ. कमलेश द्विवेदी भी बाल मन के सच्चे पारखी हैं, वह बालकों की मनोदशा को भांपते हुए बालकों के अन्तः मन में उठ रही भावना को बाल कविता, "मैं पापा बन जाऊँ" के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं कि –

"मेरे मन में आता है यह, मैं जल्दी पापा बन जाऊँ,
पापा बनकर जैसे चाहूँ, वैसे अपना समय बिताऊँ।।
रोज सबेरे मुझे जगाकर पापा बहुत सताते हैं,
मुझसे कहते करो पढ़ाई, लेकिन खुद सो जाते हैं।"[16]

डॉ. राष्ट्रबंधु बच्चों के मनोविनोद के सफल सृजनकर्त्ता हैं। उन्होंने अपनी 'अकल की खोज' द्वारा एक अत्यन्त सरल सुबोध और बच्चों के निश्छल पाक मन की वैचारिक शैली द्वारा वर्णित कर कहा है जब गुरुजी

बच्चे से कह देते हैं कि तुझे अक्ल नहीं है तो उसके पवित्र मन में यह आता है कि यह अक्ल क्या है? यह मैं भइया से पूछूँगा, कि यह अक्ल कहाँ मिलती है? क्या इसकी कोई दुकान है? यही बाल मनोविनोद का सफल चित्रण देखते हैं –

"भैया अकल, कहाँ मिलती है?
परेशान है, बहुत पिताजी।
मुझसे है हैरान गुरूजी,
मुझे चिढ़ाते मेरे साथी,
अकल नहीं है सब्जी भाजी,
क्या गोली जैसी पिलती है?
भैया अकल कहाँ मिलती है?"[17]

निष्कर्ष –

निष्कर्षत बाल साहित्य की रचनाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि बालमनोविज्ञान बालसाहित्य की अभिन्न आत्मा है। वास्तव में बच्चों के अनुभव, बड़ों से बिलकुल भिन्न होते हैं। उनकी अलग दुनिया होती है जिसमें जीवन के मूल्य बालसुलभ मनोवृत्ति के आधार पर निर्मित होते हैं– बड़ों के आधार पर नहीं। बालविकास की दिशा में बालसाहित्य की सही भूमिका का निर्वाह करने के लिए इन सभी पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। बाल मनोविज्ञान बच्चों के मनोभावों का संपूर्ण अध्ययन है, जिसके अन्तर्गत गर्भकालीन अवस्थाओं से लेकर परिपक्व अवस्था तक की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं निहित होती हैं।

संदर्भ –

[1] M.E. Walsh – The Relation of Nursery School Training to the Development of Certain Personality Traits, Child Development.
[2] डॉ. श्रीप्रसाद – हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ 1
[3] डॉ. श्रीप्रसाद – हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ 4
[4] डॉ. श्रीप्रसाद – हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ 6
[5] डॉ. श्रीप्रसाद – हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ 8
[6] हरिकृष्ण देवसरे – बाल साहित्य मेरा चिन्तन, नये मूल्यों की तलाश, पृष्ठ 48
[7] सम्पादक राजकिशोर सिंह – हिन्दी बाल साहित्य और बाल विमर्श, पृष्ठ 27
[8] सम्पादक हरिकृष्ण देवसरे – बाल साहित्य रचना और समीक्षा, बाल मनोविज्ञान, पृष्ठ 53
[9] सम्पादक हरिकृष्ण देवसरे – बाल साहित्य रचना और समीक्षा, पृष्ठ 34
[10] सरपाल हेजार्ड – बाल विकास में बाल साहित्य का योगदान, पृष्ठ 63
[11] संपादक डॉ. हरिकृष्ण देवसरे – बाल साहित्य समीक्षा, पृष्ठ 73
[12] डॉ. हरिकृष्ण देवसरे – बाल विकास में बाल साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 35
[13] सोहनलाल द्विवेदी – जी होता चिड़िया बन जाऊँ, बचपन एक समंदर, पृष्ठ 172
[14] डॉ. परशुराम शुक्ल – मम्मी मुझे बताओ, समझो कल की छुट्टी कलरव, पृष्ठ 22
[15] डॉ. परशुराम शुक्ल – टीचर जी का डंडा, नंदन वन, पृष्ठ 36
[16] डॉ. कमलेश द्विवेदी – मैं पापा बन जाऊँ, अक्षर शिल्पी, जनवरी–मार्च 2010, पृष्ठ 98
[17] संपादक कृष्ण शलभ, रामशंकर 'चंचल' – हम बच्चे, बचपन एक समंदर, पृष्ठ 633